

समाधिमरण भाषा

(पं. सूरचन्दजी कृत)

(नरेन्द्र छन्द)

वन्दौ श्री अरहंत परमगुरु, जो सबको सुखदाई ।
इस जग में दुःख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई ॥
अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे, कर समाधि उर माहीं ।
अन्त समय में यह वर माँगूँ, सो दीजे जग राई ॥१॥
भव-भव में तन धार नये मैं, भव-भव शुभ संग पायो ।
भव-भव में नृप रिद्धि लई मैं, मात-पिता सुत थायो ॥
भव-भव में तन पुरुष-तनों धर, नारी हू तन लीनों ।
भव-भव में मैं भयो नपुंसक, आतमगुण नहीं चीनों ॥२॥
भव-भव में सुरपदवी पाई, ताके सुख अति भोगे ।
भव-भव में गति नरकतनी धर, दुख पाये विधि योगे ॥
भव-भव में तिर्यच योनि धर, पायो दुख अति भारी ।
भव-भव में साधर्मी जन को, संग मिल्यो हितकारी ॥३॥
भव-भव में जिनपूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो ।
भव-भव में मैं समवसरण में, देख्यो जिनगुण भीनो ॥
एती वस्तु मिली भव-भव में, सम्यक्गुण नहीं पायो ।
ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो ॥४॥
काल अनादि भयो जग भ्रमतैं, सदा कुमरणहिं कीनों ।
एक बार हूँ सम्यक्युत मैं, निज आतम नहीं चीनों ॥
जो निज-पर को ज्ञान होय तो, मरण समय दुःख काँई ।
देह विनासी मैं निजभासी, शांति स्वरूप सदाई ॥५॥
विषय-कषायन के वश होकर, देह आपनो जान्यो ।
कर मिथ्या सरधान हिये विच, आतम नाहिं पिछान्यो ॥
यों क्लेश हिय धार मरणकर, चारों गति भरमायो ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहीं लायो ॥६॥

अब यह अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरण समय यह माँगौ ।
 रोग जनित पीड़ा मत होवो, अरु कषाय मत जागो ॥
 ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजै ।
 जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यागद छीजै ॥७॥
 यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवै ।
 चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै ॥
 अतिदुर्गन्ध अपावनसों यह, मूर्ख प्रीति बढावै ।
 देह विनासी, जिय अविनासी, नित्यस्वरूप कहावै ॥८॥
 यह तन जीर्ण कुटी-सम आतम, यातैं प्रीति न कीजै ।
 नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामैं क्या छीजै ॥
 मृत्यु होन से हानि कौन है, याको भय मत लावो ।
 समता से जो देह तजोगे, तो शुभ तन तुम पावो ॥९॥
 मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माहीं ।
 जीरन तन से देत नयो यह, या सम साहू नाहीं ॥
 या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै ।
 क्लेशभाव को त्याग सयाने, समताभाव धरीजै ॥१०॥
 जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई ।
 मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावै, स्वर्ग सम्पदा भाई ॥
 राग-द्वेष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुःखदाई ।
 अन्त समय में समता धारो, परभव पन्थ सहाई ॥११॥
 कर्म महादुठ बैरी मेरो, तासेती दुःख पावै ।
 तन पिंजर में बन्द कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावै ॥
 भूख तृषा दुःख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़ै ।
 मृत्युराज अब आय दयाकर, तनपिंजरसों काढ़ै ॥१२॥
 नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये ।
 गन्ध सुगन्धित अतर लगाये, षट्स असन कराये ॥

रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तनकेरी ।
 सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी ॥१३॥
 मृत्युराय को शरन पाय तन, नूतन ऐसो पाऊँ ।
 जामैं सम्यकरतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ ॥
 देखो तन-सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं ।
 मृत्यु समय में ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई ॥१४॥
 यह सब मोह बढावन हारे, जिय को दुर्गतिदाता ।
 इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता ॥
 मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती ।
 समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो संपति तेती ॥१५॥
 चौ आराधन सहित प्राण तज, तौ ये पदवी पावो ।
 हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुक्ति में जावो ॥
 मृत्यु कल्पद्रुम-सम नहिं दाता, तीनों लोक मँझारै ।
 ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥१६॥
 इस तन में क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन हो है ।
 तेजकांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है ॥
 पाँचों इन्द्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवै ।
 ता पर भी ममता नहिं छोड़ै, समता उर नहिं लावै ॥१७॥
 मृत्युराज उपकारी जिय को, तनसों तोहि छुड़ावै ।
 नातर या तन बन्दीगृह में, पर्यो-पर्यो बिललावै ॥
 पुद्गल के परमाणु मिलकर, पिण्डरूप तन भासी ।
 याही मूरत मैं अमूरती, ज्ञान ज्योति गुणखासी ॥१८॥
 रोग-शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गल लारै ।
 मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारे ॥
 या तनसों इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आन बन्यो है ।
 खान-पान दे याको पोष्यो, अब सम-भाव ठन्यो है ॥१९॥

मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन, यह तन अपनो जान्यो।
 इन्द्रीभोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछान्यो॥
 तन विनशनतैं नाश जानि निज, यह अयान दुःखदाई।
 कुटुम्ब आदि को अपनो जान्यो, भूल अनादी छाई॥२०॥
 अब निज भेद जथारथ समझ्यो, मैं हूँ ज्योतिस्वरूपी।
 उपजैं विनसै सो यह पुद्गल, जान्यो याको रूपी॥
 इष्टनिष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सब पुद्गल सागै।
 मैं जब अपनो रूप विचारों, तब वे सब दुख भागैं॥२१॥
 बिन समता तनऽनंत धरे मैं, तिन में ये दुख पायो।
 शस्त्रघाततैं अनन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो॥
 बार अनन्ताहि अग्नि माहिं जर, मूवो सुमति न लायो।
 सिंह व्याघ्र अहिऽनन्त बार मुझ, नाना दुःख दिखायो॥२२॥
 बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई।
 मृत्युराज को भय नहिं मानो, देवै तन सुखदाई॥
 यातैं जब लग मृत्यु न आवै, तब लग जप तप कीजै।
 जप तप बिन इस जग के माहीं, कोई कभी ना सीजै॥२३॥
 स्वर्ग सम्पदा तपसों पावै, तपसों कर्म नसावै।
 तप ही सों शिवकामिनिपति द्वै, यासों तप चित लावै॥
 अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई।
 मात-पिता सुत बांधव तिरिया, ये सब हैं दुःखदाई॥२४॥
 मृत्यु समय में मोह करें ये, तातैं आरत हो है।
 आरततैं गति नीची पावै, यों लख मोह तज्यो है॥
 और परीग्रह जेते जग में, तिनसों प्रीत न कीजे।
 परभव में ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजे॥२५॥
 जे-जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसों नेह निवारो।
 परगति में ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो॥

जो परभव में संग चलें तुझ, तिनसों प्रीत सु कीजै।
 पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजै॥२६॥
 दशलक्षणमय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लावो।
 षोडशकारण नित्य विचारो, द्वादश भावन भावो॥
 चारों परवी प्रोषध कीजै, अशन रात को त्यागो।
 समता धर दुरभाव निवारो, संयमसों अनुरागो॥२७॥
 अन्त समय में यह शुभ भावहि, होवैं आनि सहाई।
 स्वर्ग मोक्ष फल तोहि दिखावें, ऋद्धि देहिं अधिकाई॥
 खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता लाकैं।
 जा सेती गति चार दूर कर, बसहु मोक्षपुर जाकैं॥२८॥
 मन थिरता करकै तुम चिंतो, चौ आराधन भाई।
 ये ही तोकों सुख की दाता, और हितू कोउ नाहीं॥
 आगे बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी।
 बहु उपसर्ग सहे शुभ पावन, आराधन उरधारी॥२९॥
 तिनमें कछु इक नाम कहूँ मैं, सो सुन जिय चित लाकै।
 भावसहित अनुमोदे तासों, दुर्गति होय न ताकै॥
 अरु समता निज उर में आवै, भाव अधीरज जावै।
 यों निश-दिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हिये विचलावै॥३०॥
 धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
 एक श्यालनी जुग बच्चाजुत, पाँव भख्यो दुःखकारी॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३१॥
 धन्य-धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो।
 तो भी श्रीमुनि नेक डिगे नहीं, आतम सों हित लायो॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३२॥

देखो गजमुनि के शिर ऊपर, विप्र अग्नि बहु बारी।
 शीश जलै जिम लकड़ी तिनको, तौ भी नाहिं चिगारी॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३३॥
 सनतकुमार मुनी के तन में, कुष्ठ वेदना व्यापी।
 छिन्न-भिन्न तन तासों हूयो, तब चिन्त्यो गुण आपी॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३४॥
 श्रेणिक सुत गंगा में डूब्यो, तब जिननाम चितार्यो।
 धर सलेखना परिग्रह छोड़्यो, शुद्ध भाव उर धार्यो॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३५॥
 समंतभद्र मुनिवर के तन में, क्षुधा वेदना आई।
 तो दुःख में मुनि नेक न डिगियो, चिन्त्यौ निजगुण भाई॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३६॥
 ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौशांबी तट जानो।
 नद्दी में मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३७॥
 धर्मघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाड़ो।
 एक मास की कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढ़ो॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३८॥
 श्रीदत्त मुनि को पूर्वजन्म को, बैरी देव सु आके।
 विव्रिय कर दुख शीततनो सो, सह्यो साध मन लाके॥

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥३९॥
 वृषभसेन मुनि उष्ण शिला पर, ध्यान धर्यो मनलाई।
 सूर्यघाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकार्ई ॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४०॥
 अभयघोष मुनि काकन्दीपुर, महावेदना पाई।
 वैरी चण्ड ने सब तन छेद्यो, दुख दीनो अधिकार्ई ॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४१॥
 विद्युतचर ने बहु दुख पायो, तो भी धीर न त्यागी।
 शुभभावनसों प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी ॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४२॥
 पुत्र चिलाती नामा मुनि को, बैरी ने तन घाता।
 मोटे-मोटे कीट पड़े तन, ता पर निज गुण राता ॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४३॥
 दण्डकनामा मुनि की देही, बाणन कर अरि भेदी।
 ता पर नेक डियो नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी ॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४४॥
 अभिनन्दन मुनि आदि पाँच सौ, घानी पेलि जु मारे।
 तो भी श्रीमुनि समताधारी, पूरबकर्म विचारे ॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४५॥

चाणक मुनि गौघर के माहीं, मून्द अगिनि परजाल्यो।
 श्रीगुरु उर समभाव धारकै, अपनो रूप सम्हाल्यो॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥४६॥
 सात शतक मुनिवर दुःख पायो, हथनापुर में जानो।
 बलि ब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥४७॥
 लोहमयी आभूषण गढ़के, ताते कर पहराये।
 पाँचों पांडव मुनि के तन में, तौ भी नाहिं चिगाये॥
 यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
 तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥४८॥
 और अनेक भये इस जग में, समता-रस के स्वादी।
 वे ही हमको हों सुखदाता, हरि हैं टेव प्रमादी॥
 सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप, ये आराधन चारों।
 ये ही मोकों सुख के दाता, इन्हें सदा उर धारों॥४९॥
 यों समाधि उरमाहीं लावो, अपनो हित जो चाहो।
 तज ममता अरु आठों मद को, ज्योतिस्वरूपी ध्यावो॥
 जो कोई नित करत पयानो, ग्रामांतर के काजै।
 सो भी शकुन विचारै नीके, शुभ के कारण साजै॥५०॥
 मात-पितादिक सर्व कुटुम सब, नीके शकुन बनावै।
 हल्दी धनिया पुंगी अक्षत, दूब दही फल लावै॥
 एक ग्राम जाने के कारण, करें शुभाशुभ सारे।
 जब परगति को करत पयानो, तब नहिं सोचो प्यारे॥५१॥
 सब कुटुम जब रोवन लागै, तोहि रुलावै सारे।
 ये अपशकुन करै सुन तोकों, तू यों क्यों न विचारै॥
 अब परगति को चालत बिरियाँ, धर्मध्यान उर आनो।
 चारों आराधन आराधो, मोहतनों दुख हानो॥५२॥

होय निःशल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सुध्यावो।
जब परगति को करहु पयानो, परम तत्त्व उर लावो॥
मोहजाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों निश्चय उर धारो॥५३॥

(दोहा)

मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढ़ो सुनो बुधिवान।
सरधा धर नित सुख लहो, 'सूचन्द' शिवथान॥
पंच उभय नव एक नभ, सम्बत् सो सुखदाय।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय॥५४॥

श्री सिद्धचक्र माहात्म्य

श्री सिद्धचक्र गुणगान करो मन आन भाव से प्राणी,
कर सिद्धों की अगवानी॥टेक॥
सिद्धों का सुमन करने से, उनके अनुशीलन चिन्तन से,
प्रकटै शुद्धात्मप्रकाश, महा सुखदानी S S S
पाओगे शिव रजधानी ॥श्री सिद्धचक्र. ॥१॥
श्रीपाल तत्त्वश्रद्धानी थे, वे स्व-पर भेदविज्ञानी थे,
निज-देह-नेह को त्याग, भक्ति उर आनी S S S
हो गई पाप की हानि ॥श्री सिद्धचक्र. ॥२॥
मैना भी आतमज्ञानी थी, जिनशासन की श्रद्धानी थी,
अशुभभाव से बचने को, जिनवर की पूजन ठानी S S S
कर जिनवर की अगवानी ॥श्री सिद्धचक्र. ॥३॥
भव-भोग छोड़ योगीश भये, श्रीपाल ध्यान धरि मोक्ष गये,
दूजे भव मैना पावे शिव रजधानी S S S
केवल रह गयी कहानी ॥श्री सिद्धचक्र. ॥४॥
प्रभु दर्शन-अर्चन-वन्दन से, मिटता है मोह-तिमिर मन से,
निज शुद्ध-स्वरूप समझने का, अवसर मिलता भवि प्राणी S S S
पाते निज निधि विसरानी ॥श्री सिद्धचक्र. ॥५॥
भक्ति से उर हर्षाया है, उत्सव युत पाठ रचाया है,
जब हरष हिये न समाया, तो फिर नृत्य करन की ठानी S S S
जिनवर भक्ति सुखदानी ॥श्री सिद्धचक्र. ॥६॥
सब सिद्धचक्र का जाप जपो, उन ही का मन में ध्यान धरो,
नहिं रहे पाप की मन में नाम निशानी S S S
बन जाओ शिवपथ गामी ॥श्री सिद्धचक्र. ॥७॥
जो भक्ति करे मन-वच-तन से, वह छूट जाये भव-बंधन से,
भविजन! भज लो भगवान, भगति उर आनी S S S
मिट जैहै दुखद कहानी ॥श्री सिद्धचक्र. ॥८॥